हमारे शिक्षालय और लोकोत्सव

□ पद्मश्री देवीलाल सामर
(संस्थापक-संचालक,
भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर)

आज की पीढ़ी के बच्चे अपने देश, समाज और धर्म की अनेक परम्पराओं से अनभिज्ञ रहते हैं; क्योंकि उनके माता-पिता, अध्यापक, अध्यापिकाएँ, अभिभावक, हितैषी एवं सगे-सम्बन्धी स्वयं भी इतना बदला हुआ जीवन जीते हैं कि बच्चों को क्या दोष दिया जाय ? घर के सभी लोग पाश्चात्य सभ्यता में सराबोर हैं। घर का समस्त वातावरण पश्चिमी है और जो नया समाज उन्होंने बनाया है वह थोथा, दिखावटी एवं भौतिकसुख-उन्मुखी है। हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ, जो आज की पीढ़ी को केवल ढकोसला मात्र लगती है, किसी समय हमारी उन जड़ों के समान थीं, जिन पर हमारे जीवन के विशाल वृक्ष खड़े थे। आज जड़ें तो सड़ गई हैं और जिन परम्पराओं से हम ऊपर-ऊपर से चिपके हुए हैं, वे इन्हीं सूखे वृक्षों के समान हैं।

हमारे फीके लोकोत्सव

यों कहने के लिये तो हम होली, दीवाली भी मनाते हैं, रक्षाबन्धन का आयोजन भी करते हैं, स्त्रियाँ पीपल-पूजा करती हैं, गणगौर उत्सव भी मनाया जाता है, तीज-त्यौहार भी होते हैं, हरियाली अमावस्या पर हजारों का जमघट जमा हो जाता है, दशहरा की छुट्टियाँ भी होती हैं, शिवरात्रि, कृष्ण-जन्माष्टमी, नाग-पंचमी आदि सभी हमारी छुट्टियों के कलेण्डरों में महिमा-प्राप्त हैं। परन्तु हममें से कितने ऐसे हैं, जो इनके मर्म को समझकर इनका आनन्द लेते हैं। महापुरुषों की जयन्तियां, जन्म-मरण एवं स्मृति-दिवस भी मनाये जाते हैं। वे सब केवल औपचारिक मात्र हैं। सार्वजनिक संस्थानों एवं विद्यालयों में इन छुट्टियों का मतलब यह है, कि हम तत्सम्बन्धी साहित्य पढ़ें, महापुरुषों की जीवनियों से कुछ सीखें, उनके जीवन के बड़े-बड़े प्रसंगों पर चर्चा करें, नाटक रचें, गीत गावें व उनके समाधि-स्थलों एवं स्मृति-स्थानों पर जाकर कुछ क्षण चिन्तन-मनन करें; परन्तु वह सब कुछ नहीं होता। केवल नाम के लिये ये छुट्टियां हैं और नाम ही के लिए हम इन पारम्परिक उत्सव-त्यौहारों को मानते हैं।

इन लोकोत्सवों का मतलब था कि हम तत्सम्बन्धी जानकारियाँ प्राप्त करें, सैकड़ों की तादाद में मिलकर एक दूसरे से स्नेह-सौहार्द बढ़ावें, एक दूसरे के दुःख-दर्द में काम आवें, मिलकर विचार-विनिमय करें, स्मृति-स्थलों को सजावें-संवारें। हमारे भारतीय जीवन में लोकोत्सवों का बड़ा महत्त्व रहा है। इन्हें मनाने के लिए हम चारों धाम की यात्रा करते थे। देश-देशान्तर देखते थे। भारतीय जीवन की विविधताओं में एकता के दर्शन करते थे। हमारे देश में अनेक संस्कृतियों का आगमन हुआ और वे सब मिलकर एक बन गईं। हमारे यहाँ अनेक ऐसे मन्दिर, मकबरे, मेले, उत्सव एवं पर्व हैं, जिनमें सर्वधर्म एवं जातीय मेल-जोल के दर्शन होते हैं। अजमेर शरीफ के ख्वाजा मोहिनुद्दीन चिश्ती की मजार पर हजारों हिन्दू भी जियारत के लिए जाते हैं। हिन्दुओं के अनेकों ऐसे पर्व, उत्सव और त्यौहार हैं, जिन्हें मुसलमान भी बड़ी श्रद्धा से मनाते हैं। राजस्थान के रामापीर को हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही मानते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे नवीन लोकोत्सव

ऐसे पारम्परिक एवं आस्थापरक अवसरों को भूलकर हम ऐसे अवसरों की खोज में हैं, जहाँ हम हजारों की तादाद में मिल सकें, एकनिष्ठ होकर कोई बात कह सकें, या अपनी श्रद्धा, स्नेह एवं आत्मीयता के सुमन चढ़ा सकें। हजार कोशिश करने पर भी हम अपने स्वातन्त्र्य एवं गणतन्त्र दिवस को राष्ट्रीय त्यौहारों की शक्ल नहीं दे सके। कारण इसका यह है कि हम अभी तक अपने जीवन में राष्ट्रीय भावना को सांस्कृतिक परिवेश प्रदान नहीं कर सके। गांधी, नेहरू को हम भूल गये। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण, तिलक, लाजपतराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गुरु नानक, दादू, कबीर, तुलसी, मीरा, गालिब, अमीर खुसरो, अब्दुल रहीम खान-खाना आदि अनगिनत हिन्दू-मुस्लिम सन्तों ने जो कुछ हमारे देश को दिया है उसे हम भूल गये।

उम्र में जो बड़े हैं, या जो बूढ़े हो चुके हैं, या जिनमें अभी तक पुराने संस्कार शेष हैं, वे तो इस गरिमा से परिचित हैं। वे शास्त्र, इतिहास एवं अध्यात्म की किताबें पढ़ते हैं, पूजा-पाठ, इबादत एवं अध्ययन करते हैं, तथा यथा-संभव उस तरह का जीवन भी जीते हैं। नित्य क्रम उनका व्यवस्थित है। चिन्तन, मनन एवं साधना में वे सदा ही लीन रहते हैं, लेकिन आज की पीढ़ी का क्या हाल है। इसे कभी हम सोचते हैं क्या ? केवल उनसे डेडी-मम्मी कहलाने मात्र से हम उनके माता-पिता बन जाते हैं क्या ? उनकी रोज की आवश्यकताएँ पूरी करने मात्र से हम अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं क्या ? सैंकड़ों की तादाद में स्कूल, कालेज खोल लेने मात्र से हमारे बच्चे पढ़-लिख जायेंगे और उन्हें अपने देश की थाती का ज्ञान हो जायेगा क्या ? और ज्ञान हो भी जायगा तो क्या वे उनके अनुकूल जीवन जी सकेंगे ? पाठ्य-पुस्तकों में अपने महापुरुषों की जीवनियों का समावेश करने मात्र से क्या वे अपनी संस्कृति से परिचय पा सकेंगे ?

भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति के प्रति आज समस्त विश्व की आँखें लगी हैं। उन्हें यह अनुभव हो गया है कि केवल धन जमा कर लेने तथा भौतिक सुखों पर आधारित रहने मात्र से सुख नहीं मिलता, अन्ततोगत्वा उन्हें उस अनुभव की आवश्यकता है जो उन्हें सच्चा सुख दे सके। धन-वैभव की उनके पास कमी नहीं है। साधन-सुविधाएँ, पढ़ाई-लिखाई, रोजगार, मौज-मजे की उनके पास सुविधाएँ बहुत हैं, परन्तु फिर भी वे सुख-चैन की नींद नहीं सोते। वह भावना उनके पास कहाँ है, जो हमें यह बतलाती है कि जितना छोड़ेंगे, जितना वैभव और भौतिक सुख के बोझ से हलके होंगे, उतनी ही चैन की नींद लेंगे और आनन्द से मृत्यु का आलिंगन करेंगे। हमारे देश में अमीरों ने जान-बूझकर इसी सुख के लिए गरीबी को आलिंगन किया है। कभी हमारे देश में त्यागी, तपस्वी तथा साधु-सन्त विद्वान आदर पाते थे, पर आज पैसे वाला, धनिक, सत्ताधारी आदर पाता है। एक वह समय था कि स्वामी हरिदास को अकबर ने अपने दरबार में बुलाया था तो सन्त हरिदास ने कह दिया कि अकबर को मेरे संगीत का आनन्द लेना हो तो मेरे पास आवे और सम्राट अकबर को पैदल हरिदास के पास जाना पड़ा। इसी आत्मिक सुख के लिए हमारे बड़े-बड़े सम्राट राज-पाट छोड़कर जंगलों में चले गये। इसी त्याग, तपस्या एवं अपरिग्रह-भावना से हमें महावीर और बुद्ध जैसे महापुरुष प्राप्त हुए, जिन्होंने विश्व में जैन एवं बौद्ध संस्कृति के माध्यम से जीवनोत्कर्ष की बात कही। ऐसे ही महान मुनियों की देन से हमें ऐसे-ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जिन्हें पढ़कर आज समस्त विश्व आश्चर्यचकित है। उन्होंने जन्म, मरण एवं ब्रह्मज्ञान की बातों को खोलकर रख दिया। इस ज्ञान ने जीवन की उन बड़ी-बड़ी समस्याओं एवं प्रश्नों का हल प्रस्तुत किया है, जिन्हें सुलझाने के लिए वैज्ञानिक एवं तात्त्विक लोग आज भी पच रहे हैं।

हमारी धरोहर का आभास

क्या हम यह नहीं चाहेंगे कि हमारी आज की पीढ़ी को इस धरोहर का आभास नहीं कराया जाय ? क्या हमारे आज के शिक्षा क्रम में इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कोई योजना है ? हमारे पारम्परिक साहित्य में जो ज्ञान छिपा है वह क्या बच्चों के सामने आता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे लोक-जीवन में वे समस्त परम्पराएँ झलक रही हैं, जिनमें धर्म, अध्यात्म, जीवनोत्कर्ष की बड़ी-बड़ी बातें छिपी हैं। उनमें बड़े-बड़े शास्त्रों का सार छिपा है। क्या हम उनसे बच्चों को अवगत रखते हैं? आज हमारे लोक-देवता तथा तत्सम्बन्धी चलने वाले गीतों एवं गाथाओं में हमारे जीवन का वह सार छिपा है, जो बड़े-बड़े शास्त्रों में उल्लिखित है।

उन्हीं सब जीवनादर्शों को जीवित रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने लोकोत्सवों की योजना पारित की है, जिन्हें मनाने के लिये हजारों-लाखों लोग दौड़ पड़ते हैं। वे उन्हें मनाने के लिए तर्क-वितर्क में नहीं पड़ते हैं। वे केवल उनके द्वारा अपने जीवन में आनन्द पूरना जानते हैं। इन्हीं अटूट आस्थाओं के कारण वे सुखी भी हैं। अभाव-ग्रस्त जीवन से वे दुःखी नहीं हैं। वे जो रात को कबीर, मीरा, दादू के गीत गाते हैं, उनमें जीवन का यह सार छिपा है—यह संसार कागद की पुड़िया है। सराय है, मुसाफिरखाना है। आज यहाँ कल वहाँ, चलते ही रहना है, तो फिर संसार का बोझ ढोकर अपने मन को बोझिल क्यों बनाया जाय? क्या हमारे बच्चों में ये संस्कार भरने के लिये हमारे पास कुछ है?

संस्कार निर्माण

छोटी उम्र में जो कुछ दिया जायगा, वही कायम रहेगा। बाद में जब बच्चे बड़े हो जायेंगे, उन्हें इस ज्ञान की आवश्यकता होगी, तब वे किताबें ढूंढ़ेंगे। उस समय उन्हें यह ज्ञान ऊपर से थोपा हुआ नजर आयेगा। उनका मन उसे ग्रहण नहीं करेगा। आज अनेक विदेशी हमारे देश की सड़कों पर बैठे, घूमते-फिरते दीवाने से चलते-फिरते नजर आते हैं। वे अपने पास नशे की चीजें रखते हैं। मन को हलका रखने को वे उसका सेवन करते हैं। वे गरीब नहीं, भिखमंगे नहीं। उनके माता-पिताओं के पास लाखों का धन है। वे केवल मानसिक रूप से दुःखी रहने के कारण हमारे देश में आये हैं। उन्होंने कभी पढ़ा था कि भारत की संस्कृति गंगा के किनारे, पहाड़ों पर, तथा गरीबी में निवास करती है। इसी सुख की तलाश में वे हिन्दुस्तान में आते हैं। वे लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति छोड़कर आये हैं। उन्हें इस देश में बंगलों की जरूरत नहीं, सड़क, गली, पहाड़ तथा चबूतरों पर साधारण प्राणियों की तरह जीना ही उन्हें अच्छा लगता है। उनका जीवन विकृत इसलिए है कि उनको बचपन से ही सम्भाला नहीं गया है। उनको अपने माता-पिताओं के जीवन से, सिवाय विकृतियों के और कुछ भी सीखने को नहीं मिला है। इसीलिये वे अपने माता-पिता से दुःखी हैं, और उनके माता-पिता उनसे।

भगवान की दुआ है कि हमारे बच्चों में अभी तक ये विकृतियाँ प्रविष्ट नहीं हुई हैं, परन्तु जो कुछ भी हमें पश्चिमी सभ्यता की झूठी नकल से मिला है, उसमें विकृतियाँ आना लाजिमी है। पति-पत्नी एक दूसरे से असन्तुष्ट हैं। उन्हें गरीबी में सादगी से रहना नहीं आता, उनकी आदतें खराब हो गई हैं, परम्परा का उन्हें ज्ञान नहीं है, संस्कृति से वे कोसों दूर हैं। जीवन में उनके किसी प्रकार की आस्था नहीं है तो उनके बच्चे भी हिप्पी जैसा जीवन जीने लागेंगे। आज थोड़ा-बहुत शुरू भी ऐसा ही हुआ है। माता-पिता की बात बच्चे नहीं मानते। उनका उन पर काबू नहीं रहा और न बच्चों को कुछ संस्कार देने की उनमें क्षमता है।

हमारी जिम्मेदारी

अतः अब समस्त जिम्मेदारी हमारे विद्यालयों एवं शिक्षाक्रम पर आ जाती है। इन समस्याओं पर गहराई से सोचने का कार्य शिक्षाविदों पर है। अंग्रेजों के जमाने में हमें जो शिक्षा मिली थी, वह गुलामी की शिक्षा थी। हमारा देश आजाद हुआ। उसके बाद तो हमारी शिक्षा भारतीय संस्कृति एवं जीवन के अनुकूल होनी चाहिए थी। इस ओर प्रयास भी हुए हैं, परन्तु अभी तक निश्चित चित्र सामने नहीं आया है। बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में, शिक्षाक्रम में, तथा विद्यालयों के वातावरण में, हमारी इन थातियों के लिए पर्याप्त स्थान रहना चाहिए। जहाँ विश्व का ज्ञान उन्हें दिया जाय, वहाँ भारतीय संस्कृति से उन्हें सराबोर किया जाना भी बहुत आवश्यक है। उनकी इतिहास, भूगोल, विज्ञान, समाजविज्ञान, साहित्य की पुस्तकों में इस तरह की सामग्री के लिए आग्रह होना चाहिए। स्कूल जीवन में जो कोर्स की पढ़ाई से बाहर की प्रवृत्तियाँ पनपाई जा रही हैं, उनमें इनकी प्रधानता रहनी चाहिए। हर लोकोत्सव, लोकपर्व, त्यौहार, विद्यालयों में सही ढंग से मानाया जाना चाहिए। बच्चों को जहाँ पहाड़ों पर घूमने ले जाया जाता है, भूगोल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञान एवं औद्योगिक स्थलों के दौरे कराये जाते हैं, वहाँ उन्हें मन्दिरों, मस्जिदों, तीर्थस्थलों, मेलों, पर्व-उत्सवों में भी ले जाना चाहिए, साधु-सन्तों को स्कूलों में बुलाना चाहिए। उनके प्रवचन कराना चाहिए। उन्हें ऐसे स्थलों पर ले जाना चाहिए जहाँ लोग स्वतः अपना वैभव त्यागकर सादगी एवं शान्ति का जीवन बिताते हों। विद्यालयों के पुस्तकालयों में ऐसी सरल एवं कथात्मक पुस्तकें होनी चाहिए, जिन्हें बच्चे रुचिपूर्वक पढ़ सकें।

स्कूल में किसी व्यक्ति विशेष के स्वागत, सम्मान एवं किसी विशिष्ट नेता, अफसर, मन्त्री, मिनिस्टर के स्वागत में जो उत्सव होते हैं, उनकी जगह हमारे बड़े-बड़े लोकोत्सव मनाये जाने चाहिए। जो मेले, नदियों के किनारों, मन्दिर, मठों के पास लगते हैं, वे स्कूलों के प्रांगण में भी लगने चाहिए। जो नाच, गान, नाटक, मेलों में होते हैं, वे सभी स्कूलों में लोकोत्सव के रूप में प्रस्तुत होने चाहिए। महापुरुषों, महाज्ञानियों, तपस्वियों, विद्वानों, महाकवियों, महान साहित्यकारों के जीवन पर प्रवचन, समारोह आदि स्कूलों में आयोजित होने चाहिए। इन सब के लिए पाठ्यक्रमों में स्थान होना आवश्यक है। बड़े-बड़े शिक्षाविद बैठकर चिन्तन करें। योजनाएँ बनावें, समस्त वर्ष का कलेण्डर तैयार करें, तथा पाठ्यक्रम में हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं की कौन सी मूल-भूत बातें समाविष्ट हों और उनका कार्यान्वियन किस तरह हो, इस पर विचार होना लाजिमी है।

□

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ?

—कल्पलता के समान विद्या क्या क्या काम सिद्ध नहीं करती ?

अर्थात् सभी कार्य सफल करती है।

—भोजप्रबन्ध ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org